कबीर और महात्मा बसवेश्वर के सामाजिक विचारों की तुलना

डॉ.एन.जी.एमेकर
हिंदी विभागाध्यक्ष
श्री हावगीस्वामी महाविद्यालय,
उदगीर जि.लातूर

भारतवर्ष के मध्ययुगीन इतिहास की सबसे बडी प्रमुख घटना भक्ति आंदोलन है। व्यक्ति की एकांतिक व्यक्तिनिष्ठ साधना भक्ति है। जिसका संबंध लोकमानस के साथ जुडा है। इसलिए समाज के दो अंग माने जाते है व्यक्ति तथा समाज जिनकी उन्नति भक्ति का लक्ष्य रहा है। जितना विकास व्यक्ति का आवश्यक है उतनाही समाज का सुधार भी उतनाही अत्यावश्यक है। व्यक्ति श्रेष्ठ से समाज श्रेष्ठ बन सकता है। जब व्यक्ति के दोष नहीं होते तभी समाज का स्वरुप सुंदर एवं सुव्यवस्थित होता है। व्यक्ति के अधःपतन से समाज का भी अधःपन हो जाता है। इसी अधःपतन को दूर करने के लिए ही युग-युग में महान विभूतियों का जन्म होता रहता है। इन्ही महान विभूतियों में कबीर और बसवेश्वर उल्लेखनीय है। कबीरजी और बसवेश्वरजी जितने महान भक्त थे उतने ही महान समाजसुधारक थे। उन्होंने अपने युग में प्रचलित कुरीतियाँ, रुढीयाँ, प्रथायें तथा अंधविश्वासों का विरोध तथा विद्रोह किया है। दोनों ने अपने समकालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों और दोषों को दूर करने का प्रयास किया है।

कबीर जी के समय समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अंधकार, अव्यवस्था और विश्रृंखला फैली थी। सशक्त अशक्त का शोषण कर रहा था। समाज आडंबरपूर्ण साधना एवं मिथ्याचार में डुबा हुआ था। हिंदू-मुस्लिम आपसी संघर्ष में धर्म का वास्तविक रुप लुप्त हो गया था। हिंदू समाज अपने वर्णाश्रम धर्म एवं असंख्य जाति, उपजाति, कुल, उपकुल के कारण छिन्न-विछिन्न हो गया था। ऊँच-नीच, छूत-अछूत, बहुदेव उपासना से हिंदू समाज मुस्लिम का सामना न कर पाया था।

कबीर जी के तरह ही कर्नाटक के बसवेश्वर जी के समय शिवरणों के सामने हिंदू-मुसलमान समस्या नहीं थी। उनकी प्रधान समस्या ब्राम्हण जाति से ही थी। बसवेश्वर का सामाजिक आंदोलन ब्राम्हण विरोधी आंदोलन ही था। वर्णभेद, जातिभेद, लिंगभेद, वृत्तिभेदरुपी साँप अपनी जहरी जिव्हाओं से मानव समाज को डस रहा था। अंधश्रध्दा का अंधकार दश दिशाओं में फैला हुआ था। जीवन एक अभिशाप बना था। कुल, गोत्र, जाति के नाम पर समाज में व्याप्त विषमता एवं धर्म के नाम पर होने वाले अडम्बर और मिथ्याचार के रुप में पडे समाज को नई आभा दिखाने का श्रेय कर्नाटक की महाविभूतियों में बसवजी का नाम अग्रस्थान पर है। बसवेश्वरजी को 'वीरशैव निर्णय परमावतार' अगदादिदेशिक, पुरातन पुंगव, भक्ति भंडारी आदि नामों से नामोल्लिखत है किंतु उन्हें कन्नड भाषी समाज के क्रांतिपुरुष कहना ही सबसे उपयुक्त है।

१) वर्ण व्यवस्था का विरोध :

भारतीय साहित्य के इतिहास में हम देखते है वर्ण व्यवस्था के विरुध्द सर्वप्रथम विद्रोह गौतम बुध्द ने किया उसके बाद बसवेश्वर जी ने किया है। तदुपरांत कबीरदास जी ने किया है। कबीर और बसवेश्वर दोनों ने वर्ण व्यवस्था पर करारा प्रहार किया है। उनके अनुसार कोई भी जन्म से श्रेष्ठ नहीं है। जो सब जीवों

को दया दिखाते है वे ही बडे है। कबीरदास जी ने समय-समय पर वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। धार्मिक क्षेत्र में ऊँच-नीच, छुआ-छुत को मिटाना चाहते है। वे मानते है ईश्वर के सामने सभी समान है। भक्ति के क्षेत्र में भगवान जाति के नहीं भाव के भूखे होते है। उनके लिए कोई छोटा है न कोई बडा है। इसलिए जाति-पाँति के भेद को दूर करना आवश्यक मानकर यहा कहा है-"जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।"

ब्राम्हण, शुद्र, हिंदू-मुसलमान के बीच की दीवार तोडने की चेष्टा कबीर ने की है तथा इनसे भी ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ माना है। जैसे-

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पडा रहने दो म्यान।"

बसवेश्वर जी ने ब्राम्हण व्यवस्था पर ऐसे गदा-प्रहार किया है कि कर्नाटक में वह व्यवस्था लंगडी हो गई। वे जितने महान भक्त थे उतने ही श्रेष्ठ समाजसुधारक भी थे। उनके कार्य से लगता है कि उन्होंने वर्ण व्यवस्था एवं जाति की रीढ को तोडने का बीडा उठाया था। ब्राम्हणों के ग्रंथो से ही श्लोकों का उल्लेख करके उनकी ही कथाओं का उदाहरण देकर उनके वादों की निस्सारता, खोखलेपन एवं पाखंड का भंडाफोड किया है। जिन ऋषि-मुनियों के नाम पर ब्राम्हणों में गोत्र चलते है, उनकी जातियों का उल्लेख करते हुए वे कहते है जैसे-

"व्यास मछहारिन का पुत्र है, मार्कंडेय मातंगी का पुत्र है, मंडोदरी मंडूक की पुत्री है, जाति को मत ढूँढो वे, उससे क्या होता है?"

बसवेश्वर जी ने कहा है कि जन्म से कोई ऊँच-नीच नहीं है। उन्होंने न केवल वर्ण-व्यवस्था का खंडन किया परंतु जिन ग्रंथों के आधार पर वर्णव्यवस्था एवं जाति-पाँति का समर्थन होता था उनका भी खंडन किया है। स्वयं ब्राम्हण होने पर भी वे अपने को एक अछूत का पुत्र मानते है।

२) वेद-पुराणों की श्रेष्ठता की अस्वीकृति

कबीरदास जी तथा बसवेश्वरजी ने वेद-पुराणों की श्रेष्ठता तथा मनुष्य से भी उच्चता को अस्वीकार किया है। वर्णव्यवस्था एवं ब्राम्हण श्रेष्ठता का प्रतिपादन जिन ग्रंथों में हुआ है उनकी कडी आलोचना, विरोध तथा उसके प्रति विद्रोह भी जताया है। वेद-पुराण, ग्रंथ मनुष्य से श्रेष्ठ माने जाते थे। इस श्रेष्ठता को इन दोनों ने अस्वीकार किया है। तत्कालीन ब्राम्हण समाज का ज्ञान पोथी से प्राप्त ज्ञान था, थोथा ज्ञान था। इस ज्ञान के स्त्रोत वेद थे। इन वेदों पर प्रहार करते कबीरदासजी कहते है कि, वेदों-शास्त्रों का ज्ञान निरर्थक है। प्रेम तत्व सबसे महत्वपुर्ण है। जैसे-

"पोथी पढि-पढि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होइ।"

बसवेश्वर जी भी केवल वेदों को ही ज्ञान का मूल नहीं मानते है। वेद और गीता को पढनेवाला ही बडा नहीं कहलाता। जिसमें विद्या, गुण, ज्ञान, धर्म, आचार और शील है, केवल वही बडा है। बसवेश्वर जी के नेतृत्व में जो आंदोलन हुआ वह वैदिक परंपरा के विरुध्द था। जैसे-

"वेद ब्राम्हणों का जंजाल है, शास्त्र बाजार की गप है...."

३) मुर्तिपूजा का खंडन

कबीर और बसवेश्वर जी ने समाजव्याप्त मुर्तिपूजा, अर्चना, आराधना, होम-हवन, अवतार आदी का विरोध किया। ये दोनों भी निराकार ब्रम्ह के उपासक थे। अर्थात वे एकेश्वरवादी थे। इन्हें मूर्तिपुजा नापसंद है। मंदिर, मश्जिद, गुरुद्वारा आदी में ईश्वर प्राप्त नहीं होता है। मुर्ति में बध्द किसी ईश्वर का आकार सामाहित नहीं है। वह निर्गुण निराकार तथा घट-घट निवासी है। वह एक सीमित आकार में बसता नहीं है। वह चर-चर में समाया है। जिसे लोग देवालयों-मंदिर, मस्जिद में ढुँढकर ही मरते है। ईश्वर ह्रदय में बसता है। कबीरदासजी कहते है-

"पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मैं पुजूँ पहार
ताते यह चक्की भली, पीस खाये संसार।"
बसवेश्वर जी ने अपने वचनों में इसका विरोध किया है।
"लाख भरकर बनाई हुई मूर्तियों को तुम्हारे समान कैसे मानू...?"

४) बाहयाडंबरो का विरोध

समाज में अधिकतम प्रमाण में बाहयआडंबरों का बोलबाला था। जिसमें सिर्फ विकारों को फैलाया था। ईश्वर का सत्यस्वरुप खो चुका था। विकृत अवस्था चरम सीमा पर थी। असूरी प्रवृत्तियाँ बढने लगी थी। इन सभी विकृतियों का विरोध कबीर तथा बसवेश्वरजी ने किया है। धर्म के नाम पर तो बाहयकृत्य किये जाते है वह प्रायः निरर्थक एवं निराधार है। इस धर्म के बाहयांडबरों का खोखलापन जनमानस के सामने निःसंकोच भाव से प्रकट किया है। कबीर जी तथा बसवेश्वर जी ने बाहयाडंबर, दिखावा तथा पाखंड की भर्त्सना की है। दोनों ने भी सात्विक वृत्तियों को महत्व दिया है। पुजा-अर्चना, तिलक लगाना, माला फेरना आदी पर प्रहार किया है। जैसे -

"माला फेरन जुग गया, गया न मन का फेर
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।" - कबीर

बसवेश्वर जी कहते है-

"हाथी पर बैठकर गये आप, घोडे पर बैठकर गये आप
कूडल संगमदेव को जाने बिना नरक के भागी बन गये।"

५) सदाचार एवं नम्रता पर बल/अहम् का त्याग

कबीरजी तथा बसवेश्वर जी ने व्यक्ति के अचारण पर अधिकतम बल दिया है। साहित्य, धर्म, भक्त का आचरण की कसौटी पर ही मुल्यांकन होता है कहा है। वे व्यक्ति के जीवन में अहम् के स्थान पर नम्रता की आवश्यकता मानते है। ईश्वरप्राप्ती गर्व या अहम् न होकर लघुता से होती है। कबीर तथा बसवेश्वर जी को समाज में व्यक्ति परख अहम् स्थल-स्थल पर महसुस हुआ है। जो उनका ही नाश कर देनेवाला है। इसलिए उन्होंने सदाचार पर बल देकर आचरण में विनम्रता, मृदुता को महत्व दिया है। भक्ति में भी सब गुणों का होना आवश्यक माना है। भक्तों को चाहिए कि वे अहं के बिना भक्ति करें। दूसरे शब्दों में कहा गया है कि, 'भक्ति विनयेन शोभते।' मैं शब्द अहंकार का प्रतिक है। जिसमें प्रभु, ईश्वर, दुरी ही प्राप्त होती है। जीवन में प्रभुता नहीं लघुता को अपनाकर जीवन जीने की बात कही है। दोनों ने भी सामाजिक जीवन में नीति, सदाचार और नम्रता की आवश्यकता को कहा है। दोनों विनय एवं नम्रता की मूर्ति थे। कबीर अपने आपको राम का कुत्ता मानते है तो बसवेश्वर जी अपने को शिवशरणों के नौकरों के नौकरों का गुलाम। दोनों ने अहंकार, घमंड का खंडन कर सदाचार के महत्व को बताया है। जैसे कबीर-

"तासे प्रभु मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरी।
मैं तो राम का कुत्तियाँ, मुतिया मेरा नाम।"
बसवेश्वर"कैसे आये? कुशल तो है? कहने से
क्या आपका रंग उड जाएगा...?"

६) नारी के प्रति दृष्टिकोण

नारी समाज में संसार का एक पहिया पुरुष है तो दूसरा पहिया स्त्री है। दोनों के समांतर होने से ही संसार आगे बढ सकता है। उपनिषद काल में स्त्रियों का सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में काफी आदर था। मैत्रेयी, गार्गी जिसके प्रमाण है। बाद में वह सिर्फ उपभोग्य का साधन बनी है। कबीर और बसवेश्वर दोनों ने स्त्रियों को ऐसा तत्व माना है जिससे लोग आसानी से मायावश हो जाते है। कबीर जी के अनुसार स्त्री और तृष्णा पापिन है, पतन के कारण है। वह माया स्त्रीसंपणी है और हर एक स्त्री के रुप में आकर ठगा करती है। बडे-बडे देवता भी स्त्रियों के मोह से स्वयं को नहीं बचा पाते है। अतः वह माया महाठगिनी है। वह मधुरवाणी से सबको फँसाती है। जैसे केशव के घर में कमला बनकर, शिव के भवन में भवानी होकर, जोगी के यहाँ जोगिनी होकर, राजा के

महल में रानी होकर आदी रुपों में वह मनुष्य को मायावश कर देती है। जैसे - 'नारी महाठगिनी'।

बसवेश्वरजी की यह मान्यता है कि नारी को समान अधिकार है। वह अनेकों आंदोलनों में सक्रिय है। जैसे अक्कामहादेवी, अक्का नागम्मा, अंगाबिका, नीलांबिका आदी। वैसे तो बसवेश्वर जी ने एकाध स्थानों पर मायावश करनेवाले तत्वों में नारी का उल्लेख किया है। बसवेश्वर जी ने भक्तों में चाहे स्त्री हो या पुरुष उच्च-नीच न कहकर समान माना है। बसवेश्वर जी के समाज सुधार में विधवा विवाह एक अभूतपूर्व क्रांति थी।

बसवेश्वर और कबीरजी एक क्रांतीकारी समाजसुधारक थे। दोनों सर्वधर्म समन्वयकारी, मानवधर्म के प्रतिष्ठाता और विश्वधर्म व्याख्याता थे। स्वतंत्र विचारक थे। उनका व्यक्तित्व विचित्र व बहुमुखी था। दोनों मुलतः निर्गुण भक्त, अद्‌भुत संत, जननेता, धर्मगुरु थे। वास्तव में भक्त शिरोमणि व संतश्रेष्ठ थे। कबीरजी तथा बसवेश्वरजी समाज के सच्चे पारखी थे। जनमानस के विजेता थे। दोनों समाजवादी, समन्वयवादी, साम्यवादी एवं मानवतावादी थे। वे युग-युग तक अमर रहेंगे।

वीरशैव मत में नारी को माया के रुप चित्रित नहीं किया गया है। आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में पुरुष और स्त्री समान अधिकार दिया गया है। बसवेश्वर ने स्पष्ट कहा है कि, स्त्री कदापि माया नहीं हो सकती, अपितु व्यक्ति के मन की आशा मात्र ही माया है। अतः कबीर के समान कही भी बसवेश्वर जी ने नारी निंदा नहीं की है। बसवेश्वर जी के समान भक्तिकालीन भक्तकवि या संतकवि किसी ने भी नारी को अध्यात्मिक या सामाजिक क्षेत्र में स्वातंत्र्य नहीं दिया है। भारतीय सामाजिक विचारधारा के लिए बसव का नारी आदर्श एक महत्वपुर्ण देन है। जैसे-

''कनक को है कहते माया, भाममिनी को है कहते भया
किंतु
कनक माया नहीं, कामिनी माया नहीं, मन की आशा ही माया है।
हे गुहेश्वर।''